E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

भारतीय भैषज विद्या की प्राचीनता

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

भारतीय भैषज विद्या (आयुर्वेद) की प्राचीनता इसी से सिद्ध है कि इसे चरकसंहिता में इसे अनादि और नित्य कहा गया है-'सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते, अनादित्वात्, स्वभावर्संसिद्धलक्षणत्वात् भावस्वभावनित्यत्वाच्च'। इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है-

अनादित्वात् - जिसकी उत्पत्ति न हो, उसे अनादि कहते हैं। आयुर्वेद की न कभी उत्पत्ति हुई और न होती है, अतः यह अनादि है। भारतीय चिकित्सा एवं चिकित्सेतर साहित्य में आयुर्वेद के ज्ञान अथवा उपदेश का उल्लेख मिलता है ज्ञान तथा उपदेश को छोड़कर कहीं उत्पत्ति का प्रसंग नहीं मिलता है। आयु और बुद्धि की परम्परा की अविच्छिन्न धारा के अनादिकाल से दर्शन होने के कारण आयुर्वेद अनादि है। आयु का ज्ञाता क्षेत्रज्ञ आत्मा भी शाश्वत है। द्रव्यहेतु (आरोग्य और अनारोग्य) भी अनादि हैं।

स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात्- द्रव्यों का यह स्वभाव-सिद्ध लक्षण है कि जो द्रव्य जिस गुण वाले होते हैं, उनसे उन्हीं शारीरिक गुणों की वृद्धि और उनसे भिन्न गुणों का ह्रास होता है। इस प्रकार द्रव्यों का स्वभाव-सिद्ध लक्षण आयुर्वेद की नित्यता का द्योतक है।

भावस्वभावनित्यत्वात्- भाव पदार्थ का जो अपना स्वभाव होता है, वह नित्य है। जैसे अग्नि में उष्णता एवं जल में द्रवता आदि। गुरुद्रव्यों के सेवन से गुरुत्व गुण की वृद्धि एवं लघुत्व का ह्रास होता है। इसका ज्ञान आयुर्वेद से प्राप्त होता है, अतः आयुर्वेद नित्य है। इसे इस प्रकार और स्पष्टता के साथ समझा जा सकता है-गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष आदि परस्पर विरुद्ध गुणों वाले द्वन्द्वों का सामान्य विशेष के द्वारा वृद्धि तथा ह्रास होता है। कहा गया है कि गुरु गुण वाले द्रव्यों का निरन्तर अभ्यास करने से शरीर में स्थित गुरु धातुओं की वृद्धि होती है और लघु गुण प्रधान द्रव्यों का निरन्तर अभ्यास करने से शरीर में स्थित लघु धातुओं की वृद्धि होती है। इसी प्रकार अन्य गुणों को भी समझना

चाहिए। जैसे स्निग्ध गुण प्रधान द्रव्यों से स्निग्ध गुण वाले धातुओं की वृद्धि होती है। यह जो भाव पदार्थों का स्वभाव है, वह नित्य है। पृथिवी आदि द्रव्यों का अपना-अपना लक्षण नित्य है।

आयुर्वेद अनादि और नित्य होने के कारण शाश्वत है।

पुनश्च आयुर्वेद की नित्यता के उक्त साधक कारणों के अतिरिक्त मुख्य बात यह है कि आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद है। वेद नित्य हैं, अतः उसका अंग आयुर्वेद भी नित्य है।

वस्तुतः आयुर्वेद अनादिकाल से संसार के प्राणिमात्र की पीड़ा के प्रतिकार का सन्देश देता आ रहा है। यह विश्व चेतना का प्राण है। यह जीवन का विज्ञान है। आयुर्वेद की शाश्वत धारा समस्त चिकित्सा पद्धतियों को अनुप्राणित करती है। इसका इतिहास सृष्टि रचना से पूर्व का है। आचार्य चरक ने आयुर्वेद को अनादि और शाश्वत कहा है। आचार्य सुश्रुत ने कहा है कि ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पूर्व ही आयुर्वेद की रचना की, जिससे जन्म लेने के बाद प्राणी सुखी जीवन बिता सकें। प्रारिम्भक काल से ही जीवमात्र सबल, स्वस्थ एवं आयुष्यसम्पन्न हो, इसके लिए विधाता ने सृष्टि के प्रारम्भ में ही पञ्चमहाभूत तथा उनसे विविध प्रकार के पदार्थों की रचना की। इस प्रकार सुश्रुत के अनुसार प्राणियों की उत्पत्ति के पूर्व ही आयुर्वेद का प्रारम्भ होता है-'इह खलु आयुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य अनुत्पाद्येव प्रजाः श्लोकशतसहस्र मध्यायसहस्रं च कृतवान् स्वयम्भूः'। काश्यपसंहिता में भी यह विचार व्यक्त किया गया है कि स्वयं ब्रह्मा ने सृष्टि रचना के पूर्व ही आयुर्वेद की रचना की-'स्वयम्भूर्ब्रह्मा प्रजाः सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थम् आयुर्वेदमेव अग्रेऽसृजत सर्वावित् ततो विश्वानि भूतानि'। अष्टाङ्गहृदय में आचार्य वाग्भट ने कहा है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने आयुर्वेद का स्मरण किया और प्रजापति को उसका उपदेश किया। स्मरण उसी वस्तु का किया जाता है, जिसका अस्तित्व पहले से विद्यमान होता है। अतः स्मरण शब्द से यह ध्वनित होता है कि आयुर्वेद का ज्ञान पहले से ही था-'वेदं प्रजापतिमृजिग्रहत्।ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुष्यो'। इस प्रकार आयुर्वेद के सभी प्रमुख आचार्य सृष्टिरचना के पूर्वकाल में ही आयुर्वेद का अस्तित्व स्वीकार करते हैं, इससे आयुर्वेद की प्राचीनता स्वयंसिद्ध है।

विश्व-वाङ्मय में वेद प्राचीनतम वाङ्मय माने जाते हैं। उन्हें भी अनादि और नित्य माना जाता है। उनमें भी 'ऋग्वेद' प्राचीनतम ग्रन्थ एवं ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण वेद माना जाता है। ऋग्वेद के

काल के विषय में बड़ा मतभेद है । समस्त ज्ञान का आदि स्रोत वेद है और आयुर्वेद वेद का ही अंग है, अतः वेद की प्राचीनता के साथ ही आयुर्वेद की प्राचीनता स्वयं सिद्ध हो जाती है। आयुर्वेद एक प्रत्यक्षमूलक शास्त्र है एवं इसकी प्रामाणिकता औषधियों के प्रत्यक्ष प्रभाव को देखने से सिद्ध है, इसी आधार पर वेद की भी प्रामाणिकता सिद्ध होती है। आयुर्वेद उपवेद के रूप में प्रसिद्ध है। कुछ लोग इसे ऋग्वेद का उपवेद मानते हैं, किन्तु इसे अथर्ववेद का उपवेद मानना अधिक युक्ति संगत है। इसी अभिप्राय से आचार्य चरक ने वैद्यों को अथर्ववेद के प्रति भक्ति रखने की बात कही है, क्योंकि अथर्ववेद स्वस्त्ययन, बलि, होम और दान आदि की प्रक्रिया अपनाकर दैवव्यपाश्रय चिकित्सा का उपदेश करता है।

ऋग्वेद में पशुचिकित्सा, सूर्यचिकित्सा, जलचिकित्सा तथा अग्नि चिकित्सा आदि का भी उल्लेख मिलता है। यजुर्वेद में यक्ष्मा, उन्माद, हृदयरोग, कुष्ठ, श्लीपद एवं अर्श आदि की चिकित्सा तथा अनेक औषधियों का वर्णन मिलता है। इसी प्रकार अथर्ववेद आयुर्वेदीय विषयों से भरा पड़ा है और उसमें त्रिदोष, अग्निवर्णन, शरीररचना, शरीरक्रिया, रोगनिदान, कृमि, प्रसूति, विषविज्ञान, शल्य-शालाक्य, भूतविद्या, रसायन, वाजीकरण आदि विषयों का वर्णन विशद रूप से उपलब्ध होता है।

आयुर्वेद प्राचीनतम शास्त्र है- उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर आयुर्वेद को प्राचीनतम शास्त्र मानना सर्वथा युक्तिसंगत है, क्योंकि भारतीय वाङ्मय के प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेद तथा अन्य वेदों में आयुर्वेदीय विषयों की उपलब्धि प्रचुर मात्रा में होती है। ब्रह्मा के मुख से प्रकट हुआ आयुर्वेद परम्परया विकसित होता गया और जिस आयुर्वेद का अथर्ववेद में वर्णन था, वह विकसित होकर आयुर्वेदीय संहिताओं में फैल गया।

प्राचीन संहिताओं में वर्तमानकाल में चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता, भेकसंहिता तथा काश्यप संहिताएँ उपलब्ध हैं। चरक और सुश्रुत तो संपूर्ण हैं, किन्तु भेल और काश्यप संहिताएँ खण्डित मिलती है। हारीत और हरिहर के नाम से भी दो संहिताएँ मिलती हैं, किन्तु उनकी भाषा और उनके विषयवस्तु को देखने से ऐसा लगता है कि वे दोनों किसी सामान्य व्यक्ति की रचनाएँ हैं, उनमें मौलिकता नहीं प्रतीत होती । वाग्भटाचार्य के दो ग्रन्थ अष्टाङ्गसंग्रह और अष्टाङ्गहृदय भी संहिताग्रन्थ गिने जाते हैं ।

वस्तुतः आयुर्वेद न केवल प्राचीन विद्या है, अपितु यह अनादि और शाश्वत शास्त्र है। चरक ने इसे 'त्रिसूत्रं शाश्वतं पुण्यम्' कहा है। सुश्रुत ने भी 'तदिदं शाश्वतं पुण्यम्' कहा है। चरक ने आयुर्वेद के शाश्वत पक्ष का जोरदार समर्थन किया है। आयु की परम्परा, उसका ज्ञान और उसके ज्ञाता सदैव रहे हैं, कभी भी यह परम्परा विच्छिन्न नहीं होती। सुख-दुःख एवं उनके कारण और उनकी चिकित्सा की परम्परा भी अक्षुण्ण रही है। इस प्रकार आयुर्वेद, उसका ज्ञान और उसके ज्ञाता की परम्परा अनादि होने से आयुर्वेद अनादि एवं शाश्वत है। जो अनादि और शाश्वत है, उसकी प्राचीनता अपने आप सिद्ध हो जाती है ।

वेदों में आयुर्वेद-

ब्रह्मा ने सृष्टिरचना के पूर्व ही प्राणियों के जीवन की रक्षा व्यवस्था के लिए आयुर्वेद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन कर दिया। सृष्टि के आदिकाल से ही रोगों के प्रतिकार का प्रयत्न शुरू हो गया। रोगों को दूर कर जीवन को स्वस्थ, नीरोग तथा दीर्घ बनाना ही आयुर्वेद का मुख्य लक्ष्य है। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थों में 'वेद' प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। अन्य विद्याओं की तरह वे आयुर्वेद के भी स्रोत हैं, उसी स्रोत से निकलकर यह जीवन का विज्ञान विश्व में प्रवाहित हुआ है।

गोपथब्राह्मण में भेषज को अथर्व कहा गया है – 'येऽथर्वाणस्तद् भेषजम्' । जो अथर्वा है, वह भेषज है। औषधि बढ़ते हुए रोग को रोकती है, इसलिए उसे 'अथर्वा' कहते हैं। यही 'अथर्वा' मुख्यरूप से अथर्ववेद में प्रतिपादित है, इसलिए उसका नाम अथर्ववेद है। भेषज के द्वारा अमृतत्व की प्राप्ति होती है, जो ब्रह्मपद है, उसे ही मोक्ष या निर्वाण भी कहते हैं- 'यदभेषजं तदमृतम्। यदमृतं तद्ब्रह्म'।

वैदिक वाङ्मय में अश्विनी-द्वय को देववैद्य कहा गया है। इन्होंने आथर्वण दधीचि से 'मधुविद्या' प्राप्त की थी। ये आरोग्य, दीर्घायु, पौरुष, शक्ति, सन्तति और समृद्धि देनेवाले कहे गये हैं। वेदों में अग्नि, इन्द्र, वरुण, मरुत् और रुद्र देवभिषक् कहलाते हैं। इनकी चिकित्सा बड़ी ही विलक्षण रही है। इनके चिकित्सा के चमत्कार आज के वैज्ञानिक युग में भी आश्चर्यजनक प्रतीत होते हैं, जिसके अध्ययन से वैदिककालीन चिकित्सा के प्रोन्नत स्थिति में होने का आभास होता है। आयुर्वेद के सभी अङ्गों की चमत्कारी चिकित्सा का उदाहरण मिलता है।

ऋग्वेद में आयुर्वेद– ऋग्वेद के विभिन्न सन्दर्भों के अनुसार आयुर्वेदीय विषयों का निम्नलिखित परिचय मिलता है-

(क) अश्विनीकुमार का चिकित्सा-कौशल-

१. दधीचि के शिर को हटाकर उसकी जगह घोड़े के शिर का प्रत्यारोपण किया और उसे हटाकर असली शिर लगा दिया।

२. राजा रखेल की कन्या विशाला की टांग टूट गयी थी, उसकी जगह लोहे की टांग लगायी।

३. ऋचाश्व की आँखे अन्धी हो गयी थीं, उन्हें अच्छी आँखें दी।

४. यज्ञ के कटे शिर का पुनः सन्धान किया।

५. पूषन् के टूटे दाँतों को फिर से ठीक किया।

६. भग के विदीर्ण नेत्रों को फिर से ठीक किया।

७. परावक ऋषि अन्धे और लँगड़े थे, उनको पुनः दृष्टि और गति दी।

८. श्याव घायल हो गया था, उसे अच्छा कर दीर्घायु बनाया।

९. नृशद के पुत्र का बाधिर्य दूर किया।

१०. कक्षीवान् की अन्धता और बाधिर्य को ठीक किया।

११. उन्होंने चन्द्रमा के राजयक्ष्मा को दूर किया।

१२. श्राव का कुष्ठ रोग ठीक कर उसे युवावस्था प्रदान किया।

१३. वर्म ऋषि के मदात्यय रोग को दूर किया।

१४. उचथ्य के पुत्र दीर्घतमा की दुर्बलता और अन्धता को दूर किया।

१५. जल में डूबे हुए रेभ को बाहर निकालकर स्वस्थ बनाया।

१६. बन्दन को पुनः युवावस्था प्रदान किया।

१७. कक्षीवान् को पुनः युवक बनाया।

१८. वृद्ध कलि को यौवनावस्था देकर उसे पौरुषशक्तिसम्पन्न बनाया।

१९. वृद्ध च्यवन को पुनः यौवन दिया और उन्हें दीर्घायुसम्पन्न किया।

२०. जल की प्रजा को दीर्घायु और पुत्रवान् बनाया।

२१. वधिमती के वन्ध्यात्व को दूर कर उसे हिरण्यहस्त नामक सन्तान दिया।

२२. राजा मान को पुत्र दिया।

२३. वामदेव को माता के गर्भ से निकाला।

(ख) इन्द्र के चिकित्सा चमत्कार -

१. इन्द्र ने अपाला का चर्मरोग दूर किया।

२. अपाला के पिता का खालित्य रोग (गंजापन) दूर किया ।

३. पङ्ग (लूले) श्रोण को चलने का सामर्थ्य दिया।

४. अन्धे परावृज को दृष्टि दान दिया ।

ऋग्वेद में राजयक्ष्मा, अहि, पृष्ठामय एवं हृदयरोग आदि का उल्लेख किया गया है। शरीर के अंग-प्रत्यङ्गों का भी वर्णन उपलब्ध होता है। औषधियों के सम्बन्ध में औषधसूक्त से महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। औषधियों के स्वरूप, उनका प्रयोग और उनके कर्मों का भी उल्लेख है। वैद्य के लिए 'भिषक' शब्द का प्रयोग किया गया है और उसे 'रक्षोहा' और 'अमीवचातन' कहा गया है-

'यत्रौषधीः समगमत् राजानः समिताविव।

विप्रः स उच्यते भिषग् रक्षोहाऽमीवचातनः'।।

सूर्यचिकित्सा, जलचिकित्सा, अग्नि और वायु चिकित्सा का भी संकेत ऋग्वेद में उपलब्ध होता है ।

यजुर्वेद में आयुर्वेद-शुक्लयजुर्वेद में औषधियों का वर्णन मिलता है। अर्श, शोथ, दलीपद, हृदरोग और कुष्ठ आदि रोगों में उनका प्रयोग करने से वे रोग दूर हो जाते हैं, ऐसा उल्लेख है। पशुओं और मनुष्यों के शरीर के अंगों का भी निर्देश है। तैत्तिरीयसंहिता में दृष्टि प्राप्ति एवं यक्ष्मा तथा उन्माद रोग को दूर करने की ऋचाएँ हैं, राजयक्ष्मा रोग का वर्णन है एवं त्रिदोषवाद का भी संकेत मिलता है।

सामवेद में आयुर्वेद – इसमें बहुत से मन्त्र ऋग्वेद के ही हैं, जिनमें आयुर्वेद के विषयों का वर्णन है। इसलिए इसमें भी ऋग्वेद के ही समान यत्र-तत्र आयुर्वेद के विषय उपलब्ध होते हैं।

अथर्ववेद में आयुर्वेद - अथर्ववेद में आयुर्वेद के विषय विशेष रूप में मिलते हैं। यहाँ सैकड़ों सूक्त और मन्त्र आयुर्वेद से सम्बद्ध हैं। इस वेद में स्थान-स्थान पर रोग, रोगों के निवारण और रोगों में औषधियों का प्रयोग आदि विषय भरे पड़े हैं। आयुर्वेद के विकसित सिद्धान्तों की पृष्ठभूमि अथर्ववेद में उपलब्ध होती है। इसमें त्रिदोषवाद, शरीर में अग्नि की स्थिति, पाचनक्रिया, शरीर के अंग-प्रत्यंग का नाम रोगों का नाम, कृमियों का विस्तृत वर्णन, कृमिघ्न औषधियों का निर्देश, चिकित्सा के विविध प्रकार - दैवव्यपाश्रय, युक्ति-व्यपाश्रय आदि विष विज्ञान के विषय, शल्य-शालाक्य, भूतविद्या, रसायन, वाजीकरण, द्रव्यगुण के विषय एवं वनस्पतियों का विशद रूप से वर्णन किया गया है।

अथर्ववेद के समय तक आयुर्वेद के सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक पक्ष का पर्याप्त विकास हो चुका था। अतएव आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों एवं उसके अंगों से सम्बद्ध विषय प्रचुर रूप में अथर्ववेद में पाये जाते हैं।

वैदिक मन्त्रों में तीन सौ साठ अस्थियों का उल्लेख है। मन्त्रों में सैकड़ों हजारों सिराओं और धमनियों के उल्लेख से यह प्रतीत होता है कि वैदिक काल के ऋषियों को इनका ज्ञान था। शतपथब्राह्मण में तीन सौ साठ अस्थियों का वर्णन मिलता है। वैदिक विषयों के पण्डित कीथ और मैकडोनल आदि ने भी लिखा है कि वैदिककालीन भारतीय लोगों की अभिरुचि बहुत पहले ही शरीरशास्त्र के महत्त्वपूर्ण प्रश्नों की ओर आकृष्ट हो गई थी। अथर्ववेद के एक मन्त्र में मानवशरीर के विविध अङ्गों का वर्णन बड़ी सूक्ष्मता और पूर्णता के साथ उपलब्ध होता है।

ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर औषधियों के राजा के रूप में 'सोम' का वर्णन किया गया है। बहुत से मन्त्रों में वैद्य के रूप में अश्विनीकुमारों का औषधीय सोम के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बतलाया गया है। आयुर्वेदीय सुश्रुत आदि ग्रन्थों में भी सोम का औषधि के रूप में वर्णन उपलब्ध होता है। वैदिक मन्त्रों से यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल से तीन युग पूर्व भी औषधियों का ज्ञान था। वैदिक युग में हजारों औषधियों का ज्ञान था और अष्टाङ्ग आयुर्वेद के ज्ञाता पृथक्-पृथक् चिकित्सा विधियों के प्रयोग करने वाले अनेक चिकित्सक थे।

नाना शाखा-प्रशाखाओं में फैले हुए ऋग्वेद, अथर्ववेद आदि में आयुर्वेद के विविध विषय व्याप्त होने से, याज्ञिक प्रक्रियाओं में भी इसका कीर्तन होने से और आयुर्वेद नाम से वैदिक प्रस्थान के प्राचीनकाल से ही विभक्त होने से, इस भारतीय भैषज्य विज्ञान की गुरुता और इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है ।

उक्त सन्दर्भों से यह तथ्य भी प्रकट होता है कि भारतीय भैषज्य विद्या का मूलस्रोत वैदिक साहित्य ही है।

वैदिक संहिताओं के अतिरिक्त भी आयुर्वेद के रहस्यों का प्रतिपादन अन्य प्राचीनकाल के अन्य ग्रन्थों में प्राप्त होता है जिसका उल्लेख आगे किया जा रहा है-

छान्दोग्यापनिषद्-छान्दोग्यापनिषद् में सर्पविद्या तथा मधुविद्या प्रसंग, हृदय, नाड़ी वर्णन, आहार का रस मल विवेचन, पामा रोग, दीर्घायुष्य, निद्रा एवं स्वप्न का उल्लेख, रोग को दूर कर ११६ वर्ष की आयु की प्राप्ति के उपायों का उल्लेख है। भूतविद्या एक अलग विज्ञान के रूप में वर्णित है। इसमें मनुष्य की आयु ११६ वर्ष मानी है, जिसमें पहले २४ वर्ष बाल्यावस्था, ४४ वर्ष युवावस्था, ४८ वर्ष वृद्धावस्था होती है तथा इस उपनिषद् में ब्रह्म विद्या की प्राप्ति के लिये १०१ वर्षों तक इन्द्र के साथ निवास का उल्लेख है। अन्न को स्वास्थ्य का आधार, लम्बे समय तक भोजन न करने पर मनुष्य जीवित रहता है परन्तु अदृष्टा, अश्रोता, अमन्ता, अबोद्धा, अकर्ता, अविज्ञाता प्राण ही जब उत्प्राण के साथ ऊपर उठता है, तब वाणी और संगीत की उत्पत्ति होती है। उदान को उपनिषद् में उत्प्राण भी कहा है। छान्दोग्य उपनिषद् में सत्व, रज, तम तीन गुणों का वर्णन मिलता है।

बृहदारण्यक उपनिषद्- बृहदारण्यक उपनिषद् में शरीरांगों का वर्णन, हृदय तथा उसकी नाड़ियों का वर्णन, नेत्र रचना, पुरुष के अवयवों, धातुओं, लोम, त्वक्, रक्त, माँस, स्नायु, अस्थि, मज्जा के साथ वनस्पतियों तथा वृक्षों की रचना का वर्णन मिलता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में स्त्री का संभोग करते हुए इच्छानुसार गर्भाधान का उपाय बताया गया है। इसमें स्त्री के बन्ध्याकरणार्थ एवं पुत्रवती करने के लिए तथा गर्भ धारण के लिए मंत्र वर्णन मिलता है।

गरुड पुराण- इसमें रत्नों की परीक्षा, शुद्ध-अशुद्ध लक्षण, धारण विधि, पथ्यापथ्य, अनुपान, वाजीकरण तथा नेत्र रोग आदि का वर्णन है। गरुड पुराण के अनुसार शरीरस्थ सूक्ष्म वायु प्राणी की मृत्यु के बाद उसके गले से निकलती है। इसके अलावा वायु शरीरस्थ नवद्वार, तालु से निकल जाती है। शरीर की समस्त धातुओं, उपधातुओं का उल्लेख तथा प्राणी को काम, क्रोध, राग, द्वेष, तृष्णा आदि विषयों से ग्रस्त माना है। शरीर अन्नमय आदि ६ कोषों से युक्त है। गरुड पुराण में वात-पित्त-कफ के प्रकुपित होने के कारण एवं लक्षण, रसों के गुण बताये है। चिकित्सा के चार अंग तथा देश काल, अग्नि, वयस्, बल, प्रकृति आदि के अनुसार चिकित्सा करने का वर्णन किया है। विभिन्न प्रकार की प्रकृति के लक्षण चार प्रकार की अग्नि, चार प्रकार का अर्जीण एवं अरिष्ट लक्षण वर्णन किया है। पंचनिदान, दोषप्रकोपक कारण, दोषों की विकारकारिता, ज्वर के पर्याय, भेद, रक्तपित्त, अरुचि, राजयक्ष्मा, हृदय रोग, तृष्णा, मदात्य अर्श अतिसार, उदर, विद्रधि, विसर्प, वातज व्याधि, वातरक्त का वर्णन मिलता है।

ब्रह्मवैवर्त पुराण- ब्रह्मवैवर्त पुराण के ब्रह्मखण्ड में आयुर्वेदावतरण, धन्वन्तरि और नाग देवी के संवाद वर्णन से तत्कालीन विष वैद्यक के ज्ञान का पता चलता है। इसमें आयुर्वेद की उत्पत्ति ब्रह्मा के द्वारा वर्णित है।

अग्निपुराण- अग्निपुराण में सृष्टि उत्पत्ति, प्रलय, वंश परम्परा, स्वप्न, शकुन, अरिष्ट, विज्ञान, वनस्पतियों, रसशास्त्र, पशु चिकित्सा, कृमि तथा मंत्र चिकित्सा एवं मंत्र सिद्धि के उपाय, यंत्र प्रयोग द्वारा सर्प दंश की चिकित्सा का विस्तृत वर्णन मिलता है। अरोचक, अश्मरी, अपस्मार, अर्श, अतिसार, आमवात, उपदशं कर्णशूल, कुष्ठरोग, गलगण्ड, गण्डमाला, गुदभ्रंश, छर्दि रोग, तृष्णा नासारोग, नेत्ररोग, नाडीव्रण, प्रमेह, प्लीहारोग पाण्डुरोग, बालरोग (बालग्रह, मुखरोग, जिह्वारोग, मूर्च्छा, रक्तपित्त, वात व्याधि, विसर्प) आदि रोग तथा इन रोगों में चिकित्सा के लिए प्रयुक्त होने वाले योगों का वर्णन है। अग्निपुराण में प्राणायाम अष्टांग योग, स्वप्न में शुभाशुभ फल स्त्री पुरुषों के शुभाशुभ लक्षणों का वर्णन मिलता है। शारीरिक मानसिक, आगन्तुक सहज व्याधियों तथा वातादि प्रकृति के लक्षणों का

विस्तृत उल्लेख मिलता है विषहारक मंत्र और औषध, विष के प्रकार, नागों के लक्षण के बारे में बताया गया है। अग्निपुराण में आत्यन्तिक लय और गर्भोत्पत्ति, गर्भ में स्थित जीव के प्रथम महीनों में अवयवों की उत्पत्ति, सात्विक आदि गुणों के लक्षण, धातुओं, त्वचा एवं कला के कार्यों का वर्णन किया गया है। व्यायाम के द्वारा कफ नाश एवं अजीर्णता में परिश्रम न करने का उल्लेख है।

वाल्मीकि रामायण- रामायण में आयुर्वेद से सम्बन्धित विषय स्थान-स्थान पर परिलक्षित होते हैं। वनवास प्रकरण तथा स्वयंवर में राम-लक्ष्मण के सौन्दर्य की तुलना आयुर्वेद में वर्णित देव वैद्य अश्विनीकुमारों से की गई है। सुन्दरकाण्ड में समुद्र मन्थन के समय दण्डकमण्डल युक्त आयुर्वेद पुरुष धन्वन्तरि की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। बालकाण्ड तथा अयोध्याकाण्ड में वैद्य शब्द का वर्णन आता है। उत्तर काण्ड में पंचमहाभूत एवं मन की शपथ लेते हुए महर्षि वाल्मीकि द्वारा राम से सीता की पवित्रता को बताने का वर्णन मिलता है। सुन्दरकाण्ड में मूढ़ गर्भ को बाहर निकालने हेतु शल्य क्रिया की तुलना डरी हुई सीता स्वयं को काटने से करती है। इस प्रकरण से उस समय प्रचलित शल्य कर्म का पता चलता है, क्योंकि दशरथ के शव को औषध सिद्ध तैल से परिपूर्ण द्रोणी में रखा जाना, रामायण काल में शव की सुरक्षा विधि का ज्ञान होना बतलाता है। मानस, स्वाभाविक, आगन्तुक व्याधि का उल्लेख मिलता है। रामायण में ज्वर शब्द का प्रयोग दुःख के अर्थ में हुआ है। रामायण में लेह, पेय एवं भोज्य द्रव्य का वर्णन है। रामायण में मृत एवं जीवित व्यक्ति के परीक्षण की विधि वर्णित है। मृतसंजीवनी, विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी, संधानकरणी औषधि का वर्णन मिलता है। वाल्मीकि रामायण और जैमिनीय ब्राह्मण में अण्डकोशों के प्रत्यारोपण का आख्यान वर्णित है। रामायण में भौतिक वायु के साथ-साथ शारीर रूप वायु का वर्णन मिलता है।

महाभारत- महाभारत के आदिपर्व में वर्णित है कि समुद्र मन्थन के समय जो औषधियाँ समुद्र में डाली गई थी, वे अमृतस्राव के रूप में निकली तथा धन्वन्तरि अमृतयुक्त श्वेत कमण्डल धारण किये प्रकट हुए। धन्वन्तरि का आयुर्वेद के आदि देव के रूप में वर्णन मिलता है। कृष्णात्रेय का चिकित्सक के रूप में शालिहोत्र का अश्व चिकित्सक तथा सुश्रुत का शल्य चिकित्सक के रूप में वर्णन मिलता है। महाभारत में महर्षि च्यवन द्वारा अश्विनीकुमारों को यज्ञ में अधिकार का उल्लेख, चैत्ररथवन तथा

आयुर्वेद के आठ अंगों का वर्णन मिलता है। रोग का पर्याय गद, रोगों को कर्मज तथा पूर्वजन्म के पाप कर्मों के परिणाम स्वरूप इस जन्म में मनुष्य को व्याधियाँ उत्पन्न होती है। व्याधि के शारीरिक एवं मानसिक भेद तथा शारीरिक व्याधि से मानसिक तथा मानसिक व्याधि से शारीरिक रोग उत्पन्न होता है। शान्त, उष्ण और वायु शारीरिक रोगों के कारण तथा विभिन्न रोगों के नाम उन्माद, ग्रहणी, जलोदर, तृषा, पलित, शीर्ष रोग, राजयक्ष्मा, अक्षिरोग, गलग्रह उरुस्तम्भ, अपस्मार अग्निदग्ध आदि मिलते हैं। महाभारत के आदिपर्व में स्थावर एवं जांगम विष, मंत्र द्वारा विष के प्रभाव को कम करने का उल्लेख तथा तक्षक सर्प द्वारा दंशित वृक्ष को महर्षि कश्यप द्वारा मंत्रों से पुनर्जीवित करने का वर्णन है। विष के प्रभाव एवं चिकित्सा, कालकूट विष, हरताल एवं हिंगुल के गुण कर्म वर्णित है। पंचमहाभूत, इनके गुण कर्म, सत्त्व रज, तम मन के गुण, वात-पित्त-कफ के गुण कर्म, पाँच प्रकार की वायु का वर्णन संजीवनी विद्या तथा जीव के गर्भ में प्रवेश करने का वर्णन मिलता है। आठ प्रकार की वायु (प्रवाह, अवाह, उदान, समवाह, विवाह, परिवाह, परवाह), सप्त धातु, उपधातु (स्नायु, वसा, नाड़ी आदि) तथा ओजस का वर्णन शक्ति के रूप में मिलता है। पेय, चूष्य आहार, ऋतुसंधि में रोगों के उत्पन्न होने, तिन्दुक की लकड़ी की दाँतौन का वर्णन महाभारत में मिलता है। महाभारत में चिकित्सकों के लिए वैद्य, चिकित्सक, शल्यकर्ता, शल्योद्धरण, कोविद, रसायनविद्, आयुर्वेदविद् शब्द का प्रयोग होता है। विविध प्राणियों में उत्पन्न होने वाले ज्वरों के अलग-अलग नामों का उल्लेख है। महाभारत में राजयक्ष्मा को एक घातक व्याधि बताया है। महाभारत में वनस्पतियों को चेतन द्रव्यों के समान ही पंचभूतात्मक तथा इन्द्रिययुक्त माना है। अहंकार के कारण चिन्ता, संताप, कुटिलता, कठोरता, क्रोध, मान, मद, द्वेष आदि राजस भाव प्रकट होते हैं। महाभारत शान्तिपर्व के अनुसार सभी कार्य काल के वश में होते है। पुरुष को अव्यय कहा है, यह निर्गुण, अनादि, अक्षर, उदासीन, निष्क्रिय, शाश्वत एवं चित्त प्रकाश स्वरूप है।

उपर्युक्त विवेचन से भारतीय भैषज विद्या (आयुर्वेद) की प्राचीनता सिद्ध होती है।